P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श

अनामिका
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली, भारत

सारांश

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श अध्ययन की एक नई पद्धति है। यह एडवर्ड सईद के आरियंटलिज्म के प्रकाशन के साथ स्थापित होता है। अंग्रेजी के शब्द Post-Colonalism का हिन्दी पर्याय 'उत्तर–उपनिवेशवाद' अपने साथ अनेक विवाद जोड़ता है। अवधारणा के रूप में उत्तर–उपनिवेशवाद का विकास उत्तर आधुनिकता और उत्तर–संरचनावाद की तरह उत्तर–आधुनिक ज्ञान–मीमांसा का एक हिस्सा है। उत्तर–उपनिवेशवाद में उपनिवेशवाद प्रधान पद है जो एक विशेष प्रकार के इतिहास का चरण है। वि–उपनिवेशीकरण इतिहास का अगला चरण है जिसमें राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के कारण दुनिया के अनेक देश साम्राज्यवादी ताकतों की जकड़ से मुक्त हो पाए। नव–उपनिवेशवाद इतिहास का अगला चरण है जहाँ आजाद हुए देश महसूस कर रहे हैं कि वास्तव में वे आर्थिक–सांस्कृतिक रूप से अब भी गुलाम हैं। एडवर्ड सईद, फ्रैंज फैनन, होमी के. भाभा जैसे उत्तर–औपनिवेशिक विमर्शकार हमें बताते हैं कि किस प्रकार आज भी शोषण जारी है। अब प्रत्यक्ष रूप से गुलाम बनाना संभव नहीं है इसीलिए पूंजीवादी शक्तियां आर्थिक–सांस्कृतिक रूप से हमें अपने अनुकूल बना रही है। तथाकथित तीसरी दुनिया के साहित्य में शोषण–उत्पीड़न का चित्रण हुआ जो उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श का आधार स्रोत है। इस साहित्य में चित्तवृत्ति के औपनिवेशिकरण का चित्रण मिलता है जो प्रत्यक्ष शोषण से ज्यादा घातक है।

मुख्य शब्द : औपनिवेशिक, पूंजीवाद, आर्थिक संस्कृति, संरचनावाद चित्रण।

प्रस्तावना

उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययन की परिभाषा और क्षेत्र की ठीक–ठीक पहचान को लेकर विद्वानों के बीच गहरे मतभेद हैं। सामान्यतः यूरोपीय राष्ट्रों व उनके द्वारा उपनिवेश बनाए गए समाजों के बीच की अंतःक्रियाओं का अध्ययन उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श कहलाता है। उत्तर–औपनिवेशिक साहित्य क्या है? उत्तर–औपनिवेशिक सिद्धांत क्या है? यह क्यों विकसित हुआ? इन सवालों पर 'एम्पायर राइट्स बैक' के लेखकों का मानना है कि ''हम 'उत्तर–औपनिवेशिक' शब्द को उन सभी संस्कृतियों को निरुपित करने के लिए प्रयोग करते हैं जो साम्राज्यवादी प्रक्रिया से, औपनिवेशिकरण से लेकर आज तक प्रभावित है। ऐसा इसलिए है कि पूरे इतिहास में यूरोपीय साम्राज्यवादी प्रक्रिया द्वारा शुरू हुए वर्चस्व की निरंतरता है। अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के अतिरिक्त इन सभी साहित्य में जो समान बात है, वह यह है कि ये औपनिवेशीकरण के अनुभव से उपजे हैं और साम्राज्यवादी ताकत के साथ तनाव को आगे रखकर मजबूती से अपना चित्र प्रस्तुत करते हैं। साम्राज्यवादी केन्द्र की मान्यताओं के साथ मतभेद पर जोर देते हैं और यह है जो उन्हें स्पष्ट रूप से उत्तर–औपनिवेशिक बनाता है।''[1]

उत्तर–औपनिवेशिक साहित्यिक सिद्धांत के विचार का जन्म यूरोपीय सिद्धान्त की अक्षमता के कारण हुआ। यूरोपीय सिद्धांत में उत्तर–औपनिवेशिक साहित्य की जटिलताओं और उसके विभिन्न सांस्कृतिक स्रोतों को ध्यान में नहीं रखा गया। यूरोपीय सिद्धान्त विशेषतः सांस्कृतिक परंपराओं से विकसित हुए हैं लेकिन वह सार्वभौमिक होने का झूठा दावा करता है। यूरोपीय सिद्धान्त के स्टाइल और शैली के सिद्धान्त, भाषा के सार्वभौमिक चरित्र के बारे में धारणाएँ, ज्ञान–मीमांसा, इन सब पर उत्तर–औपनिवेशिक लेखन ने सवाल खड़े किये हैं। इस भिन्न किस्म के लेखन के चलते नये सिद्धान्त की जरूरत महसूस हुई। नये सिद्धान्त ने विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं में मौजूद विभेदों को समाहित करने का प्रयास किया, साथ ही विभिन्न परम्पराओं के बीच साझा लक्षणों को तुलनात्मक तरीके से निरुपित करने की इच्छा दिखाई।

''मीनाक्षी मुखर्जी के शब्दों में–उत्तर औपनिवेशिकता साम्राज्यों के पतन के बाद के समय को अंकित करने वाली कालवाचक संज्ञा मात्रा नहीं है।

विचारधारात्मक रूप से वह एक मुक्तिदायी अवधारणा है, खास तौर पर पश्चिमी दुनिया के बाहर रहने वाले साहित्य के अध्येताओं के लिए, क्योंकि वह हमें साहित्य के अध्ययन के उन तमाम अध्यायों को प्रश्नांकित करने में सक्षम बनाती है, जिन्हें हम मानकर चले थे। यह अवधारणा हमें न केवल अपनी कृतियों को अपनी शर्तों पर पढ़ने में सक्षम बनाती है, बल्कि यूरोप की मानक कृतियों को हमारे अपने विशिष्ट ऐतिहासिक और भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्पाठ करने में भी हमें सक्षम बनाती है।''[2]

प्रारम्भ में 'उत्तर–उपनिवेशवाद' पद का प्रयोग कालक्रम के सूचक के रूप में हुआ। कालांतर में तेजी से बदलते विश्व परिदृश्य, जीवन–मूल्य तथा विभिन्न विचारों एवं व्यवहारों के बीच बदलते रिश्तों के कारण इसने एक नया स्वरूप ग्रहण कर लिया। अब माना जाने लगा है कि 'उत्तर–उपनिवेशवाद' सिद्धान्त के तौर पर किसी कालक्रम का सूचक न होकर एक स्वतंत्र अवधारणा है, जिसकी मदद से गैर–पश्चिमी अध्येताओं ने उन तमाम भ्रामक पाठलोचनाओं एवं साहित्यिक कसौटियों पर प्रश्न खड़ा कर दिया, जिन्हें अब तक पूरी दुनियां मानती आयी थी।

हेलेन गिल्बर्ट और जॉन टॉमकिंस ने अपनी पुस्तक ''उत्तर–औपनिवेशिक नाटक : सिद्धान्त, अभ्यास, राजनीति Post-Colonial Drama : Theory, Practice, Politics" में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। उनका कहना है कि गलत अवधारणा के तहत उत्तर–उपनिवेशवाद को कालक्रम का सूचक माना गया।

यूरोपीय साम्राज्य ने औपनिवेशिक शासन के दौरान दुनिया को भौगोलिक रूप से दो हिस्सों में बाँट दिया– पश्चिम और पूरब। दोनों की अलग–अलग व्याख्याएँ कीं, जैसे पूरब ;प्राच्यद्ध संवेदनशील, पिछड़ा एवं असभ्य है जबकि पश्चिम अनुशासित, तार्किक, सभ्य एवं विकसित है। यह धारणा बनाई गई कि जिन काले एवं भूरे लोगों पर श्वेत राज कर रहे हैं, वे श्वेत लोगों के ऊपर बोझ थे– White Men's burden. नियति ने श्वेत लोगों को शासन करने के लिए बनाया है, ताकि काले एवं भूरे पूरब वालों को सभ्य बना सकें। यूरोपीय साम्राज्य की समाप्ति के बाद भी वे इस बात को प्रचारित करते रहे। इस प्रचार ने औपनिवेशितों को हीन बनाये रखा जो कि वास्तविक न होकर थोपी हुई थी। यहीं पर 'उत्तर–औपनिवेशिक' जैसा पद आया। यह 1970 का समय था। सर्वप्रथम हमजा अल्वी तथा जॉन एस सोल ने इस शब्द का प्रयोग किया। 20वीं सदी के अंतिम दशक तथा 21वीं सदी के आरम्भ के साथ ही उत्तर–औपनिवेशिक सिद्धान्त का विश्वव्यापी प्रचार मिला।

सर्वप्रथम सन् 1978 में उत्तर–उपनिवेशवाद को एक सिद्धान्त के रूप में एडवर्ड सईद ने विकसित किया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक औरियंटलिज्म (Orientalism) के माध्यम से उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययन को नयी दिशा दी। सईद से पहले मिशेल फूको, देरिदा जैसे ज्ञान शासिद्धात्रियों ने यूरोपीय ज्ञान के वर्चस्व तथा आधिपत्य के सिद्धान्त को उद्घाटित किया था। इन्होंने केवल यूरोप के संदर्भ में अपनी बात कही जबकि सईद ने इन दोनों के सिद्धान्तों को पूरब के संदर्भ में व्याख्यायित किया। सईद के इस कार्य से इस सैद्धांतिकी को साहित्यिक आयाम के साथ–साथ एक स्पष्ट राजनीतिक आयाम भी मिल गया।

प्रणय कृष्ण 'उत्तर–औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य' में लिखते हैं–''सईद की कृति ज्ञान–मीमांसा की उस उत्तर–आधुनिक धारणा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है जिसके अनुसार समूचा ज्ञानात्मक उत्पादन यथार्थ की प्रस्तुति नहीं बल्कि उसकी निर्मिति है। ज्ञान की निर्मिति अनिवार्यतः शक्ति संबंध से संचालित होती है। पूरब के बारे में यूरोप ने जिस ज्ञान का सृजन किया, वह यूरोपीय वर्चस्व को मजबूत बनाने की नीयत से संचालित था। ज्ञान निरपेक्ष सत्य नहीं, बल्कि एक तरह का आख्यान है जिसका स्वरूप इस बात से निर्धारित होता है कि उसका सृजन किन लोगों ने, किनके बारे में और किन उद्देश्यों से किया।''[3]

शोध का उद्देश्य

हम भूमंडलीकरण के युग में जी रहे हैं। हमारी कोई भी गतिविधि, सोच–समझ, साहित्य, राजनीति, इतिहास, संस्कृति, मूल्य–मान्यताएँ सिर्फ देश–विशेष की नहीं है। भूमंडलीकरण के नाम पर नव–उपनिवेशवादी ताकतों का हमला पूरी दुनिया में महसूस किया जा रहा है। विकास के नाम पर पूंजीवादी शोषण–उत्पीड़न के साथ उत्तर–उपनिवेशवादी पूंजीवादी संस्कृति–सभ्यता को लगभग जबरन जनमाध्यमों के माध्यम से थोपा जा रहा है। उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श नव–साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी प्रवृत्ति को समझने–समझाने का उपक्रम है। यही शोध का उद्देश्य है।

उपनिवेशवाद का संदर्भ

उत्तर–औपनिवेशिकता साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में उपनिवेशवाद की परिघटना को केन्द्र में रखकर चलता है। यूरोपीय साम्राज्यवाद के इतिहास ने उपनिवेशों के भीतर कितने व्यापक और जटिल परिवर्तनों को अंजाम दिया, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उपनिवेश बना लिए गए देशों पर इस दौर की कैसी छाप रही है, क्या चीजें उत्तर–औपनिवेशिक दौर में कायम रही, कौन से आयाम रूप बदलकर टिके रहे और कौन से आयाम लुप्त या नष्ट हुए, इन सबका अध्ययन समयकालीन मानविकी और समाज विज्ञानों का प्रमुख विषय है। उपनिवेश का संबंध उस आबादी से है जो किसी दूसरी आबादी के राजनीतिक, आर्थिक वर्चस्व के अधीन होती है। अर्थात् राजनीतिक रूप से किसी दूसरे देश के लोगों के अधीन होना उपनिवेश कहलाता है। उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श उपनिवेशकर्ता और उपनिवेश–विरोधी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने का उपक्रम करती है। इस विमर्श का बड़ा हिस्सा उस वर्चस्वशाली विचारधारा का विश्लेषण करता है जिसमें उपनिवेशितों द्वारा उपनिवेशकर्ताओं के मूल्यों एवं मान्यताओं को आत्मसात करने की प्रवृत्ति मिलती है। यह विमर्श उपनिवेशितों के प्रतिरोधा का समर्थन करता है जिससे उपनिवेशकर्त्ताओं के प्रति प्रतिरोध को शक्ति मिलती है। ये दोनों प्रवृत्ति किसी भी साहित्यिक पाठ में एक साथ मिल जाती है।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार Colony शब्द लैटिन शब्द Colonia से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका प्रयोग किसान, खेतिहर/कृषक, बगान मालिक या किसी नये

देश में बसने वाले के लिए होता है। औपनिवेशिक Colonial शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है– किसी उपनिवेश से जुड़ा या संबंधित, विशेष रूप से ब्रिटिश उपनिवेश से।

उपनिवेशवाद Colonialism शब्द का अर्थ इस प्रकार है–

1. किसी वस्तु के औपनिवेशिक होने की प्रक्रिया या ढंग जो प्रायः उजड्ड या गँवार के समानार्थी प्रयुक्त होता है।
2. औपनिवेशिक सिद्धान्त या तंत्र–व्यवस्था आज प्रायः पिछड़े या असहाय एवं शक्तिहीन जनता पर शक्तिशाली राज्य द्वारा किये शोषण के नीतियों के लिए होता है। अपमानजनक रूप से भी इसका प्रयोग होता है।

इस प्रकार उपनिवेशवाद का तात्पर्य है– शक्तिशाली राज्य द्वारा अपनी भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए किसी अन्य राज्य के क्षेत्रफल पर कब्जा जमाना तथा अपनी संप्रभुता का विस्तार करना। उपनिवेशकर्त्ता राज्य मुख्य रूप से उपनिवेशित देश के श्रम, स्रोत और उसके बाजार का अधिग्रहण करते हैं, साथ ही अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई संरचनाओं का निर्माण करके देशी जनता पर उसे थोप देते हैं। इसे सांस्कृतिक साम्राज्यवाद (Cultural Imperrialism) के नाम से जाना जाता है। सीधे–सीधे यह कहा जा सकता है कि बलशाली राज्य द्वारा अपेक्षाकृत कमजोर राज्य में एक राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हस्तक्षेप है।

औपनिवेशिक विमर्श में प्रायः यह यकीन दिलाया जाता है कि उपनिवेशकर्ताओं की नैतिकता तथा उनके मूल्य उपनिवेशितों से श्रेष्ठ हैं। नस्लवाद के साथ भी इसका संबंध जुड़ता है। पश्चिमी जगत में यह मान्यता थी कि गैर–यूरोपीय असभ्य जनता के ऊपर शासन का एक दैवीय विधान है। यह तर्क आज भी प्रचलन में है।

आशीष नंदी के अनुसार उपनिवेशवाद सबसे पहले चित्तवृत्ति का मामला है, इसलिए जनसामान्य के मानस में इसे परिभाषित करने की आवश्यकता होती है। वास्तव में उपनिवेशवादी वर्चस्व और उसके दमनात्मक रूपों से प्रत्यक्ष युद्ध की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी मानसिक रूप से युद्ध करने की। उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रत्यक्ष युद्ध के साथ–साथ मानसिक युद्ध की भी उतनी ही आवश्यकता होती है।

एडवर्ड सईद 'प्राच्यवाद' में लिखते हैं–उपनिवेशवाद न केवल सैनिक और आर्थिक वर्चस्व के रूप में कार्य करता है बल्कि वह वर्चस्व का विमर्श भी रचता है। औपनिवेशिक दौर में यूरोपीय संस्कृति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्राच्यवाद को निर्मित किया। सईद की यह धारणा प्रमाणों से पुष्ट है। 'प्रतिनिधित्व का अभाव' के आधार पर सईद मानते हैं कि पश्चिमी संस्कृति में अन्य के लिए जगह नहीं है।

फ्रैंज फैनन ने उपनिवेशवाद का संबंध मनोविज्ञान से जोड़ा है। फैनन का मानना है कि उपनिवेशवाद–विरोधी आन्दोलन में मनोविज्ञान का दोहरा उपयोग होता है। पहला मानस के स्तर पर उपनिवेशवाद का आंतरिक प्रभाव के अध्ययन–विश्लेषण में, दूसरा औपनिवेशिक वर्चस्व से उत्पन्न हीनता ग्रंथि से मुक्त करवा कर, आत्म–सक्षम होने का भाव जाग्रत करने के संदर्भ में। इस प्रकार मनोविज्ञान का प्रयोग उपनिवेशवाद के प्रतिरोधा के औजार के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार वि–उपनिवेशिकता की प्रक्रिया मानस (आत्मचेतना) के सकारात्मक बदलाव से शुरू होता है। इस प्रकार फैनन ने चित्तवृत्ति के निर्माण में उपनिवेशवाद को महत्त्वपूर्ण माना है।

वि–उपनिवेशीकरण का संदर्भ

उत्तर–औपनिवेशिक चिन्तन के विकास को समझने के लिए हमें वि–उपनिवेशीकरण के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालनी होगी। स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। कोई भी समाज किसी भी आधित्य को सरलता से स्वीकार नहीं करता है। आधित्य की प्रक्रिया का प्रतिरोध करना, उसके विरूद्ध संघर्ष करना प्रत्येक का स्वभाव है। किसी भी आधिपत्य को शुरुआत से ही विरोधों का सामना करना पड़ता है। उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद को भी आरम्भ से ही विरोधा झेलना पड़ा, जिसे वि–उपनिवेशीकरण की संज्ञा दी जा सकती है।

ईस्ट इण्डिया कंपनी 1600 ई. में भारत में आयी। 17वीं सदी तक आते–आते, जैसे–जैसे इस यूरोपीय आधित्य का शिकंजा कसना आरम्भ हुआ, वैसे–वैसे उसके विरोध में सुगबुगाहट होने लगी। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में सिद्धराजुद्दौला ने यूरोपीय साम्राज्यवाद के विरूद्ध पहला संघर्ष किया। सन् 1764 में बक्सर के युद्ध में पुनः चुनौती मिली। 1825–30 में यूरोपीय औपनिवेशिक आधिपत्य के विरोधा में मेगरा विद्रोह हुआ। 1857 में भारत में ब्रिटिश उपनिवेश के विरूद्ध सम्भवतः इतिहास का सबसे लम्बा चलने वाला मुक्ति संघर्ष हुआ, जिसमें पूरी देश की जनता ने साथ दिया था।

उपनिवेशवाद को प्रायः यूरोपीय साम्राज्यवाद के संदर्भ में व्याख्यायित किया जाता है। डच साम्राज्य, फ्रांसीसी साम्राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य–सभी यूरोपीय साम्राज्यवाद के अन्तर्गत गिने जाते हैं। 15वीं शताब्दी में पुर्तगाल के क्यूटा पर कब्जा जमाने के साथ ही यूरोपीय औपनिवेशिक आधित्य की शुरुआत हो गयी थी। अमेरिका, अफ्रीका के सीमावर्ती क्षेत्र, मध्यपूर्व भारत और पूर्व एशिया पर आधित्य जमाने के बाद यूरोपीय साम्राज्यवाद का विस्तार होना आरम्भ हुआ। 16वीं शताब्दी का उत्तर यूरोपीय साम्राज्य के विस्तार का साक्षी है। आरम्भिक प्रयासों के बाद 17वीं सदी तक पुर्तगाल और स्पेन के आधित्य को अन्य यूरोपीय साम्राज्यवादी ताकतों–फ्रांस और हालैंड के द्वारा चुनौती मिलने लगी। इसके पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य का उदय हुआ जो विश्व के अब तक के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उभरा।

वि–उपनिवेशीकरण के तीन चरण हैं– 18वीं सदी का अंत तथा 19वीं सदी का प्रारंभ वि–उपनिवेशीकरण का पहला चरण है, जब अमेरिका में ज्यादातर यूरोपीय उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया और औपनिवेशिक दासता से मुक्ति पायी। दूसरा चरण 19वीं सदी के अंत तक 20वीं सदी के पहले दशक में घटित हुआ। इस दौर में वि–उपनिवेशीकरण की

प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रान्त, रियासत जैसे पद कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका आदि राष्ट्रों के लिए प्रयोग में आये। इन राष्ट्रों में इनकी मूल संतति जैसे कनाडा में देसी इण्डियन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में आदिवासी समुदाय, दक्षिण अफ्रीका में काले अफ्रीकियों आदि का हिंसक एवं क्रूर दमन कर समाप्त कर दिया गया या फिर इनको स्थानांतरित कर दिया गया। इस अमानवीय एवं क्रूर नीति के पश्चात् इन राष्ट्रों में यूरोपीय मूल की संतति को बसाया गया। आगे चलकर इन्हीं यूरोपीय संततियों ने स्वशासिद्धत राज्य के लिए विद्रोह कर दिया। कनाडा पहला देश था, जिसने 1867 में राजनीतिक प्रभुता पायी। आसिद्धट्रेलिया ने 1900 में, न्यूजीलैंड ने 1907 में, दक्षिण अफ्रीका ने 1909 में राजनीतिक संप्रभुता प्राप्त की।

वि–उपनिवेशीकरण का तीसरा चरण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तीव्रतर रूप से घटित हुआ। दक्षिण एशिया, अफ्रीका और कैरीबियन द्वीप समूहों के उपनिवेशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीतिक रूप से मुक्ति हासिल की। ऐसा उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय संघर्ष तथा सैन्य संघर्षों के परिणामस्वरूप हुआ। भारत ने सन् 1947 में स्वतंत्रता अर्जित की। श्रीलंका 1948 में औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुआ।

निःसन्देह वि–उपनिवेशीकरण के कई कारण थे। पहला मूल कारण था कि ब्रिटिश उपनिवेशों में बहुत से राष्ट्रीय मुक्ति–संघर्ष हुए। इन मुक्ति संघर्षों का स्वरूप पहले हुए विद्रोहों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित एवं संगठित था। इन मुक्ति–संग्रामों के कारण ब्रिटिश साम्राज्य को अपने अधीन देशों को संभालना मुश्किल हो गया। दूसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध में यूरोपीय देशों के आपसी युद्ध से उनकी साम्राज्यवादी ताकत में कमी आयी और साथ ही उनकी सभ्यतागत श्रेष्ठता को धक्का भी लगा। यह निर्णायक सिद्ध हुआ। तीसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन की विश्व आर्थिक शक्ति वाली छवि धूमिल हुई, जबकि अमेरिका और सोवियत यूनियन महाशक्ति के रूप में उभरे।

वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में यूरोपीय साम्राज्यों में ही अनेक उपनिवेशवाद विरोधी विमर्शों और चिंतन को जन्म दिया। सर्वप्रथम फ्रांस में उपनिवेश–विरोधी विमर्शों की शुरुआत हुई। इन विमर्शों ने पश्चिम और पूर्व के सम्बंधें की धारणा को बदल डाला। फ्रांसीसी क्रांति के तीन नारों– स्वतंत्रता, समानता और विश्वबंधुत्व, ने केवल यूरोप ही नहीं बल्कि–विश्व–मानस को प्रभावित किया और आगे चलकर विश्व के उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के आदर्श बन गये।

सैद्धांतिकी का संदर्भ

''प्रणय कृष्ण ने अपनी पुस्तक 'उत्तर–औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य' में 'स्वतंत्रयोत्तर' शब्द को 'उत्तर–औपनिवेशिक' शब्द का काफी हद तक समानार्थक मानते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ समय तक के साहित्य पर हिन्दी आलोचकों विशेषतः डॉ. राम विलास शर्मा, नामवर सिद्ध और मैनेजर पाण्डेय के विचारों की समीक्षा की।''[4] उत्तर–उपनिवेश या अंग्रेजी का Post-colonial शब्द के प्रयोग से अनेक विवाद जुड़े हैं। प्रणय कृष्ण ने अपने शोध कार्य में इसका उल्लेख किया है।

''हरीश त्रिवेदी ने पोस्ट–कोलोनियलिज्म के हिन्दी अनुवाद उत्तर– औपनिवेशिकता में 'उत्तर' शब्द की अर्थ छायाओं को विश्लेषित करते हुए इस विमर्श की अनेकरूपता को सामने लाने की कोशिश की। उनके अनुसार (1) 'उत्तर' शब्द का एक अर्थ 'बाद की अवस्था' है, जिसके अनुसार उत्तर– औपनिवेशिकता पूर्व की औपनिवेशिक सिद्धति के बाद वाला या वर्तमान रूप है। (2) 'उत्तर' शब्द में 'बाद की अवस्था' पूर्व की अवस्था से विच्छिन्नता को व्यक्त नहीं करती, वैसे ही जैसे कि 'उत्तररामचरित मानस' में 'उत्तर' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में उपनिवेशवाद की 'बाद की अवस्था' या 'उत्तर–अवस्था' उत्तर–उपनिवेशवाद है, जिसका एक और नाम नव–उपनिवेशवाद भी है। (3) 'उत्तर' शब्द का प्रयोग उच्चतर, विकसित या और अधिक के रूप में भी होता है। इस अर्थ में भी उत्तर–उपनिवेशवाद का प्रयोग नव–उपनिवेशवाद का ही समानार्थी बनता है। (4) 'उत्तर' शब्द का एक प्रयोग जवाब देने या पहले प्रस्तुत की गई बातों को काटने के अर्थ में होता है।; जैसे पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष इस अर्थ में उत्तर–उपनिवेशवाद, उपनिवेशवाद का विलोम, प्रतिरोध या विरोध है। इस प्रकार हिन्दी पद उत्तर–उपनिवेशवाद का अर्थ–(1) उपनिवेशवाद के अंत के बाद का काल या फिर जैसा (2) और (3) में निहित है। एक तरह का नव–उपनिवेशवाद है जिसमें विदेशी और देशी, पहले और बाद के शासकों की मिलीभगत है तथा (4) के हिसाब से वह उपनिवेशवाद का प्रतिरोधी है।

आलोचक रवि श्रीवास्तव अपने लेख 'उत्तर–उपनिवेशवाद और प्राच्यवाद' में लिखते हैं, ''प्राच्यवाद पश्चिम के उपनिवेशवाद–समर्थक इतिहासकारों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा एशियाई समाजों में औपनिवेशिक शासन की वैधता एवं प्रगतिशील भूमिका के पक्ष में गढ़ा गया वैचारिक तर्क है। उसका उद्देश्य उपनिवेशों की जनता को बौद्धिक रूप में सुन्न कर, उसे अपने पक्ष में खड़ा करना है। अगर पुराने उपनिवेशवाद और आज के उत्तर–औपनिवेशिक परिदृश्य से तुलना करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि पहले की तुलना में आज का उपनिवेशवाद सैनिक शक्ति से अधिक विचार की शक्ति पर भरोसा करता है।''[5]

उत्तर–औपनिवेशिक दौर में मध्यवर्ग की बदली हुई विचारधारात्मक भूमिका को हमें ध्यान में रखना चाहिए। आज के उपभोक्ता समाज का वह बहुत बड़ा हिस्सेदार है। रवि श्रीवास्तव लिखते हैं–''आज जिसे प्रायः उपभोक्तावादी समाज, मीडिया सोसाइटी या मीडिया बूम, ताप–नाभकीय विद्युत युग, उच्च प्रौद्योगिकीय समाज कहते हैं वे सब पूंजी और प्रौद्योगिकी के संयुक्त विकास की एक निश्चित मंजिल की ओर संकेत करते हैं। डेनियल बेल ने बहुत पहले उसे 'उत्तर– औद्योगिक' समाज कहा था। भूमंडलीकरण से अभिप्राय इसी बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूंजीवाद का भूमंडलीकरण है, जिसका गुण धर्म मेंडल के शब्दों में 'ए ग्रैंड सेलिब्रेशन ऑपफ मशीन गन्स एण्ड कार्स' ;कार और मशीन गन का उत्सवीकरण है। यानी

उपभोक्तावाद एवं युद्ध आपस में जुड़ा है। यह अमेरिकी अर्थशास्त्री मेंडल भी स्वीकार करते हैं। इसलिए आज जिसे भूमंडलीकरण–वैश्वीकरण, विश्वग्राम, सूचना और संचार क्रांति का साम्राज्य बताकर प्रगति और विकास का मानदंड कहा जा रहा है, वह वस्तुतः उन सबसे कहीं अधिक गहरे एवं महत्वपूर्ण उत्तर– औपनिवेशिक समाजों के यथार्थ को सर्वथा विकृत एवं मिथ्या प्रस्तुति होने के कारण 'आइडियोलॉजिकल' है। इसलिए उसमें सच्चाई भी सिद्ध के बल खड़ी है।''[6]

''उत्तर आधुनिक वैचारिकी का नया बौद्धिक परिवेश उत्तर–औपनिवेशिक समाज है, जिसमें पुराने सामाजिक डार्विनवाद का चेहरा नये रंग–रोगन के साथ सामने आया है। उसकी हकीकत के विषय में अमेरिकी रेडिकल चिंतक सी. राइट मिल्स ने अपनी पुस्तक 'द सोशियोलोजिकल इमेजिनेशन' की भूमिका में यह कहकर साफ कर दिया था कि उत्तर–औपनिवेशिक दौर का पश्चिमी उदारवाद अब महाप्रतिक्रियावाद में बदल चुका है। वह स्वयं पश्चिमी समाज में उत्पन्न बौद्धिक संकट का परिणाम है। मिल्स ने जोर देकर कहा कि इतिहास के सबसे असभ्य एवं अनुशासनहीन लोगों ने मानव नियति, भाग्य एवं भविष्य को सभ्य एवं अनुशासित बनाने का जिम्मा ले रखा है।''[7]

''अमेरिका एवं दूसरे समृद्ध पूंजीवादी देश जिस तर्क से अमीर देशों की पूंजी, प्रौद्योगिकी एवं सेवा–शर्तों का भूमंडलीकरण चाहते हैं, उसी तर्क से वे पश्चिम की उपभोक्ता जीवन–शैली, मान्य–मूल्यों और आदतों का भी भूमंडलीकरण चाहते हैं। यानी भूमंडलीकरण को मायने हैं– पश्चिमी वर्चस्व की स्वीकृति। दूसरे शब्दों में– एक अर्थ–व्यवस्था, एक संस्कृति एवं एक सर्वमान्य इतिहास। इसे ही भूमंडलीकरण के प्रतिभावान उत्तराधिकारी वैश्विक संस्कृति बताते हैं। इतिहास, विचारधारा, कला, लेखक, साहित्य, सामाजिक जीवन में वर्ग–संघर्ष एवं वर्ग–मार्क्सवाद, सामाजिक जनतंत्रा, लोक–कल्याणकारी राज्य, पुनर्जागरणकालीन विचारों एवं सामाजिक क्रांतियों की महागाथाओं की मृत्य आदि विचारणा को फेडरिक जेम्सन ने ठीक ही बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूंजीवाद का सांस्कृतिक तर्क कहा है।''[8]

विमर्श का संदर्भ

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श चित्तवृत्ति और विचारधरा (Psychology & Ideology), व्यक्तिक पहचान और सांस्कृतिक विश्वास के बीच रिश्तों की पड़ताल करता है।

आलोचकों का मानना है कि उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श का निर्माण उस औपनिवेशिक अनुभव से हुआ है, जो लोग आजादी की लड़ाई में दुनिया भर में संघर्षरत थे। यह विमर्श साहित्य में साहित्यिक–सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व में कमी की बात करता है। सांस्कृतिक–आर्थिक वर्चस्व से समानता की मांग करता है। किसी भी ढंग के उत्पीड़न की प्रवृत्ति को चुनौती देता है। यह चित्तवृत्ति की बात करता है जिसमें उपनिवेशितों के वि–उपनिवेशिकरण और उपनिवेशकर्ता की मनोवृत्ति का अध्ययन होता है। आत्म चेतना (Self Consciousness) इसका महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। इस विमर्श का उद्देश्य उपनिवेशित और उपनिवेशकर्त्ता के चित्तवृत्ति को क्रांतिकारी बनाना है जिससे नये समाज का निर्माण हो सके जिसमें स्वतंत्रता और समानता की प्राथमिकता हो।

स्पष्ट है कि उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श के अनेक विषय है, जो इसे विवादग्रस्त बनाते हैं। 'साम्राज्यवाद' और 'उपनिवेशवाद' की दो भिन्न धारणाएँ आपस में टकराती रहती है। आलोचकों का मानना है कि साम्राज्यवाद एक धरणा के रूप में और उपनिवेशवाद व्यवहार के रूप में नित नया रूप धारण कर रहा है। उपनिवेशवाद का नया रूप नव–उपनिवेशवाद कहलाता है, जो परम्परागत उपनिवेशवाद की निरंतरता में है, इसलिए इसे उत्तर–उपनिवेशवाद भी कहा जाता है।

औपनिवेशिक चित्तवृत्ति ने विरासत में उपनिवेशितों को अपनी नकारात्मक आत्म–छवि (Self-Magination) दी है। इससे अपनी परंपराओं के प्रति अलगाव का बोध बढ़ता है। इससे हीनता ग्रंथि भी विकसित हुई। उत्तर–औपनिवेशिक साहित्य में जो सांस्कृतिक पहचान का प्रश्न है, उसका संबंध इस हीनता ग्रंथि से है। यह विमर्श सांस्कृतिक पहचान के वर्चस्वशाली रूप को चुनौती देता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक विचारधरा की समझ और उसकी प्रतिक्रिया में उत्तर–औपनिवेशिक पहचान विकसित होती है। यह एक जटिल प्रक्रिया है।

औपनिवेशिक वर्चस्व के कारण सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूपांतरण होता है। इस रूपांतरण के कारण पूर्व–औपनिवेशिक और औपनिवेशिक का स्पष्ट विभाजन नहीं हो पाता है। औपनिवेशिक सांस्कृतिक वर्चस्व के कारण उपनिवेशितों का अपने मूल संस्कृति से विलगाव हो जाता है और उपनिवेशकर्त्ताओं की सांस्कृतिक मान्यताओं को अपना समझने लगते हैं। इस बात को भारतीय संदर्भ में भली भांति समझा जा सकता है। भारत में अंग्रेजों की घुसपैठ शिक्षा, सांस्कृतिक मूल्य एवं दिनचर्या की आदतों तक हो गई। अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी औपनिवेशिक मान्यताएं भारत में प्रचलित हैं। वि–उपनिवेशीकरण को अक्सर ब्रिटिश मिलिट्री फोर्स और शासकों के चले जाने से समझते हैं, जो उचित नहीं है। भारतीय समाज में औपनिवेशिक वर्चस्व जो अवशेष है, वह ज्यादा गहरा है। सांस्कृतिक मूल्य–मान्यताओं यहाँ तक शारीरिक प्रस्तुतीकरण ऐसे हैं जिसमें अंग्रेजों की नकल स्पष्ट झलकती है।

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक विविधता और राजनीतिक भेदभावपूर्ण नीति का औचित्य सिद्ध करने की प्रवृत्ति का विरोध करता है। यह विमर्श आधुनिकता के उस वैचारिक विमर्श में हस्तक्षेप करता है जो वर्चस्व की प्रवृत्ति को, अविकसित, विविधतापूर्ण, हाशिए के इतिहास, नस्ल, समुदाय और जनसामान्य के लिए सहज– स्वाभाविक और ग्राह्य बनाता है।

यह विमर्श उपनिवेशवाद–विरोधी आन्दोलन के स्रोत एवं इसकी राजनीतिक प्रेरणा की पहचान एवं महत्त्व देता है। इसमें इतिहास का उपयोग वर्तमान सत्ता–संरचना की बुनावट–बनावट समझने में किया जाता है। यह विमर्श

वि–उपनिवेशीकरण के ऐतिहासिक तथ्य को द्वन्द्वात्मक रूप में ग्रहण करता है। राजनीतिक–आर्थिक वर्चस्व से स्वायत्तता को तरजीह देता है। भाषा के सवाल को समझौताहीन माना जाता है।

उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श सांस्कृतिक वर्चस्व का विरोध करता है। कुछ संस्कृति को किसी दूसरी संस्कृति से श्रेष्ठ होने के बोध को, सत्ता और कुलीनता के आग्रह को चुनौती देता है। इसकी कार्ययोजना की प्राथमिकताओं में 'समानता और न्याय' को सभी के लिए लागू करवाना है। समकालीन विश्व में व्याप्त दमन और वर्चस्व के निर्मम रूप को उजाड़ना इस विमर्श की कार्य योजना है। यह वस्तुतः राजनीतिक विमर्श है जो अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के त्रिमहादेशीय जागरण के फलस्वरूप विकसित हुआ। इन देशों में आजादी और दमन के विरूद्ध संघर्ष के अनुभव उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श के स्रोत रहे हैं। गरीबी और संघर्ष का साझा अनुभव तथा वर्चस्व और दमन की औपनिवेशिक प्रवृत्ति, उत्तर–औपनिवेशिक अनुभव कहलाते हैं। इस विमर्श के दर्शन के अनुसार, अतीत की घटनाओं के लिए युद्ध जरूरी नहीं है बल्कि उन प्रवृत्तियों का विरोध जरूरी है जो वर्तमान को निर्मित करते हैं। मानवीय गरिमा के लिए नव–उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों या उसके अभिकर्त्ताओं की समझ को जन–सामान्य तक पहुंचाना।

इस विमर्श के अनुसार पुराने ढंग का साम्राज्यवाद समाप्त हो गया है क्योंकि दुनिया के अधिकांश देश आज आजाद हैं लेकिन वास्तविक आजादी नहीं मिली है। आर्थिक रूप नव–स्वतंत्र देश आत्मनिर्भर नहीं है। सामाजिक रूप से जो लोग पिछड़े रहे हैं, उन्हें सत्ता में हिस्सेदारी नहीं मिलती है। वस्तुतः उपनिवेशवाद का यह अगला चरण है जिसमें विकसित औद्योगिक देश स्वतंत्र देशों के राजनीतिक और आर्थिक नीतियों में हस्तक्षेप कर अपने हित के अनुकूल बनवाते हैं। होमी के. भाभा के अनुसार, उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श का विकास तीसरी दुनिया के औपनिवेशिक साक्ष्यों और अल्पसंख्यकों के विमर्श से हुआ है। यह विमर्श लगातार मानवीयता के संरक्षण के लिए प्रयासरत है जिससे इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हो रहा है।

अंत टिप्पणी

1. *प्रणय कृष्ण, उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, पृ. 19*
2. *प्रणय कृष्ण, उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, पृ. 23*
3. *प्रणय कृष्ण, उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, पृ. 18*
4. *सर्वेश कुमार मौर्य, उत्तर–आपैनिवेशिक विमर्श, पृ. 51*
5. *सर्वेश कुमार मौर्य, उत्तर–आपैनिवेशिक विमर्श, पृ. 72*
6. *सर्वेश कुमार मौर्य, उत्तर–आपैनिवेशिक विमर्श, पृ. 86*
7. *सर्वेश कुमार मौर्य, उत्तर–आपैनिवेशिक विमर्श, पृ. 82*
8. *सर्वेश कुमार मौर्य, उत्तर–आपैनिवेशिक विमर्श, पृ. 86*